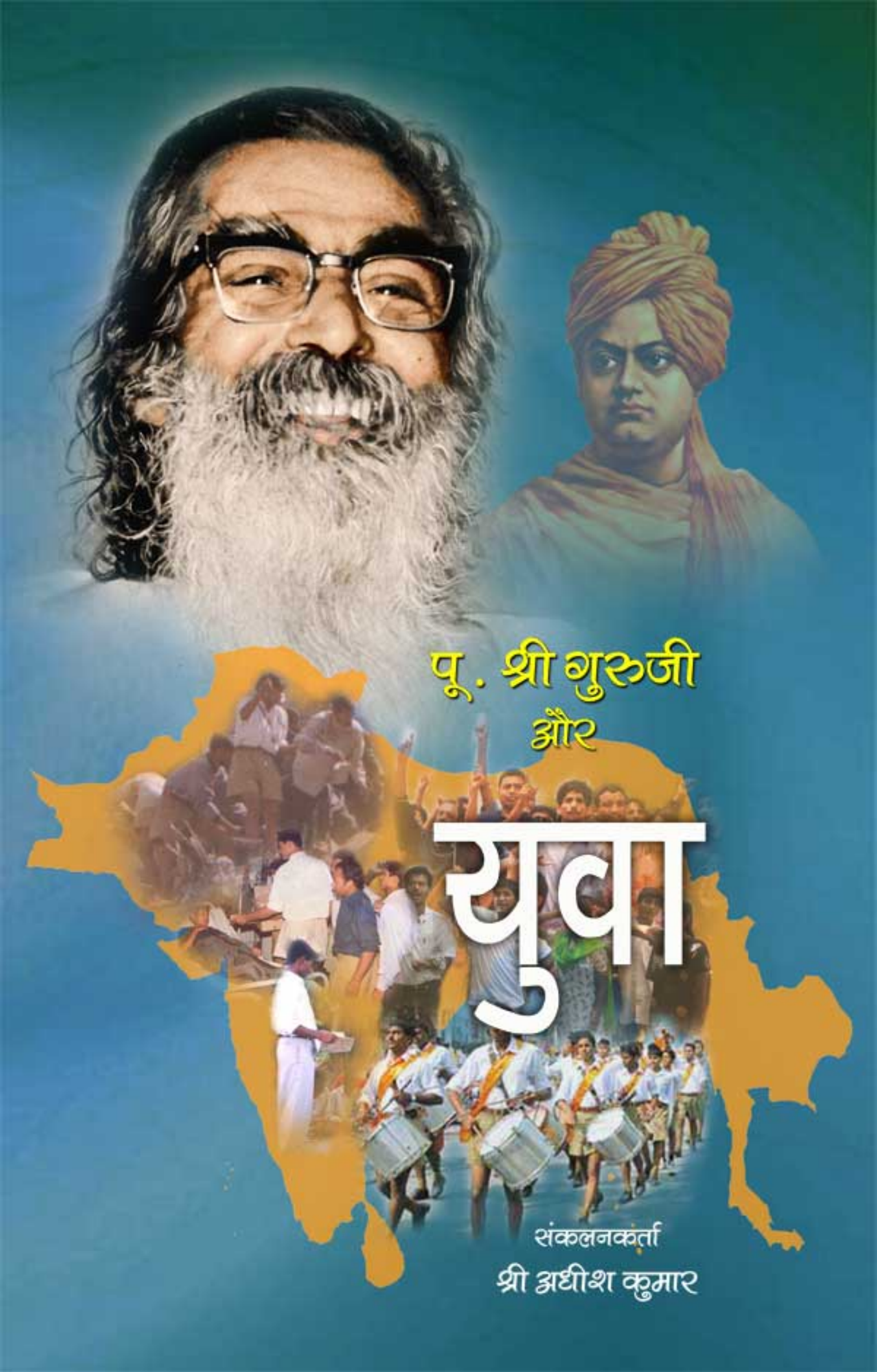

पू. श्री गुरुजी और युवा

संकलनकर्ता

श्री अधीश कुमार

पू. श्री गुरुजी
और
युवा

संकलनकर्ता
श्री अधीश कुमार

अभिनन्दन हे तरुण तपस्वी...

सामान्यतः महापुरुषों को लोकप्रिय सम्बोधन भी किन्हीं अन्य महापुरुषों से प्राप्त होते हैं। जैसे श्री मोहनदास करमचन्द गांधी को 'महात्मा', लोकमान्य तिलक से और 'बापू' श्री सुभाष चन्द्र बोस के सम्बोधन से प्रचलित हुआ। परन्तु श्री माधवराव सदाशिवराव गोळवलकर को 'गुरुजी' शब्द से सम्बोधित प्रारंभ किया, काशी हिन्दू विद्यालय के उन विद्यार्थियों ने जिनको अपने प्रिय अध्यापक श्री माधवराव से असीम स्नेह, आत्मीयता और सहयोग मिलता था। 'गुरुजी' सम्बोधन उनके युवा पीढ़ी में लोकप्रियता का परिचायक था।

जीवन पर्यंत श्री गुरुजी भारत के यौवन के प्रतीक और प्रेरक रहे। उनके द्वारा समय-समय पर युवाओं को दिया गया मार्गदर्शन, प्रेरणा आज भी सार्थक है। उनके बौद्धिक वर्गों, सार्वजनिक सभाओं, बैठकों और औपचारिक वार्ताओं में उसके अनेक अंश यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। पू. गुरुजी लिखित लेखों के अतिरिक्त, शुभकामना सन्देश और व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार से अनेकों युवाओं का मार्गदर्शन करते रहे थे।

पू. श्री गुरुजी और युवा

जीवन की दिशा

प.पू. श्री गुरुजी ने १९४० में सरसंघचालक का दायित्व सम्हाला, तभी से देश की तत्कालीन परिस्थितियों के लिए युवा शक्ति को जगाने में श्री गुरुजी जुट गये ।

जीवनोत्सर्ग के लिये उद्‌बोधन

१९४० के जून मास में डाक्टर हेडगेवार जी का निधन हो चुका था। इसके छः मास बाद दिसम्बर में नागपुर में तरुणों का शीत शिविर लगा हुआ था। इस शिविर में श्री गुरुजी के तीन बौद्धिक हुए। अपने तीसरे बौद्धिक में श्री डाक्टरसाहब के जीवन की प्रेरणादायिनी झलक प्रस्तुत करते हुए श्री गुरुजी ने कहा – ''मैं अब स्पष्ट रूप से कहता हूँ कि हम लोग डाक्टरसाहब को समझ ही नहीं सके और उनकी इच्छा थी कि हम अपनी व्यक्तिगत उन्नति की और अपने वैयक्तिक सुख-स्वप्नों की ओर न बढ़ें, अपितु इस सबसे ऊपर उठकर हम सब जुट जायें अपने संघकार्य को देशव्यापी बनाने के लिए। वस्तुतः श्री डाक्टर जी का जीवन जो बात बतलाता है, उसे हम लोग समझ ही नहीं सके। आपको शब्द चाहिये थे। ये शब्द हैं –'अपने इस राष्ट्र को संगठित और वैभवशाली बनाने के लिये हम अपने आप को संघकार्य पर न्योछावर कर दें।'

प्रभावशाली जीवन सूत्र

श्री गुरुजी के हृदय में सभी के लिये अपार स्नेह था। एक समय किसी किशोर बालक ने श्री गुरुजी से उनके हस्ताक्षर (आटोग्राफ) तथा सन्देश के लिये विनती की। श्री गुरुजी ने स्वाभाविक विनम्रता से कहा कि मैं तो कोई सन्देश देने वाला महापुरुष नहीं हूँ। किन्तु जब उस किशोर बालक ने पुनः आग्रहपूर्वक अनुरोध किया तो श्री गुरुजी ने अपनी सहज मुस्कान के साथ केवल एक वाक्य लिख कर हस्ताक्षर कर दिए। वह वाक्य था –'मनुष्य मात्र की सेवा, यही भगवान् की सेवा है।' (To Serve Man is to Serve God)..

कार्यकर्ता का दायित्व

श्री गुरुजी अपना एक उदाहरण बताते हैं 'पूर्व काल में हमारा एक कार्यकर्ता जो विद्यार्थी था, बिल्कुल अभ्यास नहीं करता था। यहाँ तक कि उसे अपने पढ़ाई के विषय तक ठीक से नहीं मालूम थे। उसके पास पुस्तकें भी नहीं थीं।

मैंने सोचा कि यह छात्र उत्तीर्ण होना चाहिये क्योंकि संघ कार्यकर्ता का अनुत्तीर्ण होना एक गलत उदाहरण प्रस्तुत करेगा। अनेक पालक अपने पालितों को उसके साथ नहीं रहने देंगे। अतः मैंने विश्वविद्यालय जाकर उसके लिए अभ्यासक्रम पुस्तिका प्राप्त की। मैं कुछ शिक्षकों से मिला और उसे पढ़ाने के लिए मुझे भी अनेक विषयों का अभ्यास करना पड़ा,

क्योंकि उसने जो विषय लिए थे, वे मेरे नहीं थे। मैं सुबह ५:३० बजे उसे पढ़ाता था। आखिर वह परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ।'

वे आगे बताते हैं ''उन दिनों सभी शाखाओं में यह प्रथा थी। ज्येष्ठ विद्यार्थी नये विद्यार्थियों की सहायता करते थे।''

''यदि हम अपने स्वयंसेवको का ध्यान नहीं रखेंगे और अपने आचरण से उन्हें यह विश्वास नहीं दिलायेंगे कि उनका स्वयंसेवकत्व उनके कल्याण के लिए ही है, तो हम उन्हें एकत्र नहीं रख सकेंगे।''

नागपुर में विद्यार्थी स्वयंसेवक मिलने आये तो श्री गुरुजी ने उन्हें कहा, ''परीक्षा समीप है, पढ़ाई चल रही है, तब बारात पास से जा रही हो तो उसे देखोगे क्या? आदत बनानी पड़ती है कि वह सुनाई भी न दे।''

वे आगे बताते है,''मैंने एम. एस्सी. और लॉ किया। मैंने पूरा हिसाब लगाया। पढ़ाई के इन वर्षो में मैं केवल १२३ दिन पढ़ता था। लेकिन जिस समय पढ़ता था, उस समय दुनिया उलट गयी होती, तब भी मुझे पता नहीं लगता।''

''अपने कार्यक्रमों से यह चीज पैदा हो सकती है। श्रेष्ठता, योग्यता पैदा होती है। 'दक्ष' करने के अभ्यास से क्रमशः हर चीज को अच्छी तरह करने का गुण आता है। Take care of Pennies and Pounds shall take care of themselves (एक-एक पैसे की चिन्ता करने से रुपए-रुपयों की चिन्ता हो ही जाती है।) छोटी बातों को ठीक करो, तो बड़ी बात कदापि नहीं बिगड़ेगी।''

१९४२ के आन्दोलन से पूर्व नागपुर में ६ मार्च की बैठक को सम्बोधित करते हुए श्री गुरुजी ने कहा -

'परीक्षा के दिनों में विद्यार्थी अपनी सफलता के लिए अपने सब सुख, आराम और आकर्षण को त्यागकर केवल किताबों के पीछे पड़ जाता है। रात-दिन पढ़ाई और परीक्षा के सिवाय उसे अन्य कोई बात नहीं सूझती। ठीक वही अवस्था आज हम लोगों की है। आज समाज की परीक्षा का विकट समय है। समाज पर भीषण संकट की काली घटाएँ छायी हुई हैं। इस समय अपने व्यक्तिगत जीवन में ही न पड़ें रहें। अब तो हमें परीक्षा के समान अपना लक्ष्य एक जगह केन्द्रित कर उस पर सारी शक्ति व सारा समय खर्च करना होगा। वही हमारा आज का सर्वप्रथम कर्तव्य है। व्यक्तिगत जीवन के सारे विचारों को हटाकर कर्तव्य की राह पर दृढ़ता व कठोरता के साथ आगे कदम रखना चाहिए। हमारा अहोभाग्य है कि आज की संकटमय अवस्था में हम पैदा हुए हैं।'

नौजवान चाहिए

एक अन्य बैठक में आह्वान करते हुए श्री गुरुजी ने कहा-

''हरियाणा में संघगीत गाया जाता था, जिसमें कहा गया था -

'आजादी के जंग बड़े-बड़े सामान चाहिए ।

तन भी, मन भी, और नौजवान चाहिए ।।'

गीत में सीधे शब्दों में यह भाव व्यक्त किया गया है कि हमें तन, मन, धन के साथ यौवन से भरा हुआ यौवन अर्थात् उमंग और सामर्थ से भरा हुआ जीवन, इस कार्य के लिए चाहिए। चूसा हुआ जीवन इसके काम नहीं आयेगा। निराश व नीरस जीवन इसके लिए काम नहीं आयेगा। कोई कहेगा कि सब कुछ कर लेने के बाद जीवन की सब उमंग और उत्साह समाप्त होने के बाद निर्वीर्य, निस्तेज और नीरस बचा जीवन संघ को समर्पण कर दूँगा, तो यह बात जँचती नहीं। यह सिद्धान्त- प्रतिकूल है। हमें तो यही समझ कर चलना होगा कि हमारे जीवन पर सर्वप्रथम अधिकार संघ का है। यह विचार कर ही हम जीवन की रचना करें।''

युवा शक्ति को आह्वान -

वे आवाहन करते हैं कि, 'पतित राष्ट्र का पुनरुत्थान अधिक से अधिक एक पीढ़ी में ही हो जाना चाहिए। किन्तु हमारी अवस्था क्या है? पूरे १७ वर्ष तक परिश्रम करने के बाद भी आज हमारा कार्य छोटा है। सत्यवादी होने के कारण हमारा संघ अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पूर्ण करेगा। एक बार हमारे मुख से जो शब्द निकल गया उसे हम सत्य करके ही दिखायेंगे, भले ही हमारा व्यक्तिगत जीवन नष्ट हो जाय। उसकी हमें परवाह नहीं। एक वर्ष के लिये अपने व्यक्तिगत जीवन के सारे विचार स्थगित कर दीजिये। इस असिधारा व्रत को अपनाकर एक वर्ष के लिए संन्यासी बन जाइये। अपने प्रति चाहे जितना कठोर बनना पड़े, उसके लिए तैयार हो जाइये। इस समय घर-बार या धन-दौलत की चिन्ता न हो। हमें अपना सारा समय, सारा ध्यान, सारी शक्ति इसी कार्य पर केन्द्रित करना है। अन्य सभी व्यक्तिगत बातों को भुला दीजिये। उनको मन के द्वार के समीप मत आने दीजिये। ऐसी दक्षता रखकर हम सभी को अपूर्व परिश्रम तथा कार्य करने के लिए सिद्ध रहना होगा।'

-(नागपुर १९४२)

विभाजन अन्तिम सत्य नहीं : श्री गुरुजी

भारत विभाजन के सम्बन्ध में बोलते समय श्री गुरुजी के मुख से बार-बार उनकी व्यथा, वेदना व्यक्त होती थी। विभाजन वस्तुस्थिति बन चुका था किन्तु श्री गुरुजी ने उसे 'अंतिम सत्य' कदापि नहीं माना। अखण्ड मातृभूमि ही सदैव उनकी उपास्य देवता रही। मातृभूमि की खंडित प्रतिमा पुनः अखण्ड बनाने का स्वप्न प्रत्येक देशभक्त के हृदय में पलता रहे, इस सन्दर्भ में एक घटना काफी उद्‌बोधक है। १९५५ में जब परम पूजनीय श्री गुरुजी से पूज्य पेजावर मठाधीश श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी ने एक प्रश्न पूछा, 'भारत क्या फिर कभी अखण्ड होगा?' श्री गुरुजी ने तत्काल उत्तर के रूप में -

'गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिंधु कावेरि जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु।।'

श्लोक कहा और कहा 'कि हम अपनी सिंधु नदी को नहीं भूल सकते। स्वामी जी के अगले प्रश्न पर कि यह कैसे होगा? श्री गुरुजी ने उत्तर दिया कि हिन्दुओं के असंगठन व

दुर्बलता के कारण ही विभाजन हुआ। उस कारण को दूर करने से देश फिर से अखण्ड हो सकेगा।'

आराम से संघ कार्य होगा - यह भूल

प्रातः ६ बजे सभी गटनायकों को बुलाया गया था। संख्या ५०० थी। २०-२५ मिनट के भाषण में श्री गुरुजी ने कहा कि, 'स्वयंसेवक देरी से आये, इसलिये कार्यक्रम देरी से शुरु हो रहा है। सुस्ती, ढिलाई जीवन को शोभा देने वाली बातें हैं क्या? आराम से काम करने से क्या होगा?'

''अपने गट के स्वयंसेवकों से असीम स्नेह से मित्रता प्रस्थापित करके ही उनके जीवन में परिवर्तन लाना और उन्हें मार्गदर्शन करना आपको संभव होगा। उनसे दूर रह कर यह कैसे हो सकेगा? कोई व्यक्ति बड़े उँचे मकान पर खड़ा रह कर, सड़क पर चल रहे लोगों को देखें तो उसे लगेगा कि बहुत से लोग लक्ष्यहीन होकर घूम रहे हैं। न जाने उनके पाँव कहाँ पड़ते हैं और वे किधर देखते हैं। इतने दूर से देखकर उनका मार्गदर्शन करना तो असंभव ही है।'' ''मजे से, आराम से, संघ का काम कर पाने की कल्पना बन गई हो, तो यह भूल होगी।''

निष्ठावान सच्चरित्र बनें -

२६ जून. ५८, मद्रास

मद्रास में विद्यार्थियों का कार्यक्रम था। शिक्षा के विषय में श्री गुरुजी बोल रहे थे। 'शिक्षा का अर्थ केवल पढ़ना और लिखना इतना ही नहीं होता। शिक्षा प्राप्ति का स्वाभाविक परिणाम होना चाहिये, अपने राष्ट्र के बारे में श्रद्धा की जागृति और अपने कर्तव्य का बोध। शिक्षा प्राप्ति से यदि मनुष्य राष्ट्रभक्त नहीं होता तो वह शिक्षा नहीं है। उसे केवल अक्षरज्ञान भले ही हम कहें। सही अर्थ में हम समाज को सुशिक्षित करना चाहते हैं। अपनी शाखा के कार्यक्रमों के द्वारा यह होता है। हमें ऐसे स्वयंसेवक मिलते हैं, जो पढ़े लिखे तो नहीं हैं, परंतु सुशिक्षित अवश्य बनते हैं।

'एक कार्यकर्ता का मुझे स्मरण होता है। ग्रामीण क्षेत्र में रहनेवाला वह स्वयंसेवक ११-१२ संघ शाखओं का संचालन करता था। अपना स्वयं का नाम लिखना भी वह नहीं जानता था परंतु समाज में प्रत्येक के साथ उसके आत्मीयता के संबंध थे। समाज के प्रति अपने कर्तव्य का बोध कराकर कार्य की प्रेरणा वह अनेक स्वयंसेवकों को देता था। इससे उस क्षेत्र में उस कार्यकर्ता का दबदबा था। उससे बातचीत करके ही उस ग्राम में अन्य सार्वजनिक कार्यक्रम भी करना उचित रहेगा, ऐसा लोगों को लगता था। इतना विश्वासपात्र वह बन गया था। चुनाव के दिनों में नेता लोग उस ग्राम में जाकर भाषण नहीं कर सकते थे। नेता ने लोगों से पूछा। इस कार्यकर्ता पर, वह अपढ़ होते हुए भी आप लोग इतना विश्वास करते हो? लोगों ने कहा कि वह भले ही अपढ़ हो, परंतु हमारे हित की ही सोंचता है। उसके कारण गाँव में सब लोग एक हृदय होकर सभी काम करते हैं। उसका चारित्र्य-शील उज्जवल है। इसी कारण हमारा उस पर विश्वास है। नेता ने वह सब सुनने

के पश्चात् इस संघ कार्यकर्ता से बातचीत की। चुनाव से घृणा क्यों करते हो? हमें बोलने देने में आपको क्या कष्ट होंगे, ऐसा पूछने पर उस कार्यकर्ता ने कहा, भाई! चुनाव के भाषणों में आप एक दूसरे के प्रति घृणा की भावना ही तो बोलते हो। जिससे आपसी द्वेष बढ़े, ऐसे भाषणों से गाँव का क्या हित होगा? उसके सीधे परंतु हृदय की शुद्धता से कहे शब्दों को सुनकर उस नेता ने उत्तर न देने में ही अपनी भलाई मान ली और वह वापस लौट गया।'

श्री गुरुजी ने कहा 'उस कार्यकर्ता का मुझे स्मरण है। कैसा निष्ठावान सच्चरित्र कार्यकर्ता है वह!'

केवल राष्ट्रभक्ति

पंजाब प्रान्त में प्रवास करते समय सोनीपत में एक युवा स्वयंसेवक ने भावावेश में 'पूजनीय गुरुजी अमर रहे।' ऐसी घोषणा कर दी। 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अमर रहे।' यह भी घोषणा कर दी। श्री गुरुजी ने उसी समय रोक कर कहा कि, 'किसी व्यक्ति या संगठन के बारे मे ऐसी घोषणा न करें, क्योंकि कोई भी व्यक्ति हो या संगठन, अमर नहीं है। केवल अपना राष्ट्र ही चिरजीवी है। इसलिये 'भारत माता की जय' यही हमारी एकमात्र घोषणा रहनी चाहिये।' किसी व्यक्ति या संस्था की नहीं।' केवल राष्ट्र की अव्यभिचारी भक्ति उत्कटता से करने की उनकी एकमात्र आकाँक्षा थी।

युवकों को आवाहन

अनेकों भाषणों में श्री गुरुजी ने युवकों का उत्साह बढ़ाते हुये उनका आवाहन किया कि ''हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति से देशभक्ति की यह ज्योति जगाएँ। उसे देशव्यापी व प्रखर बनायें। उस प्रकाश में सम्पूर्ण अज्ञानान्धकार लुप्त हो जाएगा। वह प्रकाश दुनिया की समस्त आसुरी शक्तियों को चुनौती देगा, दृढ़ नींव पर अजेय खड़ा रहेगा और सम्पूर्ण दुनिया को सिद्ध कर देगा कि हम इस श्रेष्ठ राष्ट्र के सुपुत्र हैं। केवल इसी मार्ग से हम सफल हो सकते हैं।''

''कार्य को करने का निश्चय करो, लोगों के पास जाओ, उनसे सम्पर्क स्थापित करो और ऐसा दृढ़ संगठन बनाओ, जो किसी भी परिस्थिति में भी अडिग रहे। कंधे से कंधा लगाकर काम करो। आगे बढ़ो, बढ़ते ही रहो। समय व्यर्थ नष्ट मत करो। व्यक्ति-व्यक्ति को सुसंगठित करो और संगठन से राष्ट्र निर्माण करो। आपमें युवकोचित उत्साह, साहसवृत्ति, संकटों से लड़ने और सफलता प्राप्त करने की शक्ति है। बढ़ते जाओ, भविष्य उज्ज्वल है।''

कार्य और स्वास्थ्य -

'संघ कार्य में परिश्रमपूर्वक जुटना है तो कष्ट सहना ही पड़ेगा। परिश्रम में यदि अपना शरीर सक्षम नहीं रहा थोड़ी बहुत दौड़-धूप में टूटने लगता है तो जिस महान कार्य की कल्पना लेकर हम चले हैं, वह पूर्ण नहीं होगा। इसलिए शरीर स्वस्थ और शक्तिसम्पन्न बनाना चाहिए।' यह उनका युवकों को नित्य का कहना रहता था।

उन्होंने कहा ''मैं कई वर्षो से अपने बन्धुओं से कह रहा हूँ कि अधिक नही कम-से-कम पच्चीस सूर्यनमस्कार रोज करो। किसी से परामर्श कर, जो अपने शरीर के लिए अनुकूल हो, ऐसे दो चार आसन करो। पाँच मिनट बैठकर दीर्घ श्वास लो तो शरीर में आवश्यक इतनी शक्ति, चेतनास्फूर्ति, कभी न थकने की क्षमता, अपने अन्दर आयेगी।''

''आजकल तरुणाई में अपने शरीर को स्त्रैण भावना से सुशोभित करने के लिए जितना समय लगता है उसका शतांश भी यदि शरीर को स्वस्थ बनाने में लगाएँ तो बलवान बना जा सकता है। फिर भी कहा यह जाता हैं कि हमारे पास समय नहीं।''

''अपने जीवन का मेरा स्वतःका अनुभव है। आज कहने की आवश्यकता इसलिए हुई कि मेरे शरीर का हिस्सा कुछ दिनों पूर्व हमारे डाक्टरों ने मिलकर काट डाला। इसके कारण अभी दो वर्ष से मैं सूर्यनमस्कार नहीं कर पा रहा हूँ। अन्यथा उसके पहले मैं करता था। याने मेरी आयु के ६५ वें वर्ष तक यह सब चालू था। आपको पता है कि इतने वर्षो से मैं घूम रहा हूँ। आजकल तो मेरी देखभाल अपने साथी कार्यकर्ता कुछ अधिक करते हैं। परन्तु मैं पहले गाँव-गाँव पैदल घूमा हूँ। मोटर मिली, बैलगाड़ी मिली, अन्यथा साइकिल, पैदल और कभी दौड़कर जाना आना मैंने किया है। सबेरे, रात, जब भोजन मिला अथवा नहीं भी मिला, ऐसा समय बिताया। फिर भी मैं आपके सामने जीवित हूँ और सब प्रवास फिर से कर रहा हूँ। जिस आयु में लोग थककर कहने लगते हैं कि हमारा तारुण्य समाप्त हो गया, उसमें मैं पूरी तरह उत्साह से कार्यरत हूँ। इसका कारण इतना ही है कि बचपन से मैंने व्यायाम किया। तरुणाई में, पूर्व तारुण्य में और अभी तक व्यायाम चलता रहा। व्यायाम का इतना लाभ मुझे हुआ। इसलिए सोचना चाहिए कि सब परिस्थितियों से टक्कर लेनेवाला शरीर हम प्राप्त करें।''

मानस की प्रेरणा -

अपने जीवन का अनुभव बताते हुए श्री गुरुजी कहते हैं,''गोस्वामी तुलसीदास रचित श्री रामचरितमानस पर मेरा बड़ा प्रेम है। उसका कारण यह है कि मुगलों के आतंक के कारण जब ऐसा लग रहा था कि हिन्दू का विनाश होगा, लोगों का धर्म और संस्कृति के उदार तत्त्वों पर से विश्वास उठ रहा था, तब ऐसे संकट के काल में इस ग्रन्थ ने आस्था और विश्वास को बल दिया। समाज में विश्वास उत्पन्न करने का बहुत श्रेष्ठ कार्य इस ग्रन्थ ने किया और हिन्दू जीवन को बचा कर रखा।''

''मेरी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, फिर भी जब मैं मिडिल स्कूल में पढ़ता था, मेरी हिन्दी पुस्तक में रामचरितमानस के कुछ अंश थे। मुझे वे अंश बहुत अच्छे लगे । मैंने सम्पूर्ण रामचरितमानस पढ़ा। उसके अनेक अंश भी कंठस्थ कर लिये। परन्तु आजकल कॉलेज के विद्यार्थी भी इस श्रेष्ठ ग्रन्थ से अपरिचित मिलते हैं। एक बार मैं उत्तर प्रदेश के दौरे पर गया था। उन दिनों 'हिन्दी चाहिए, अंग्रेजी नहीं' आन्दोलन चल रहा था। कालेज के विद्यार्थियों की बैठक में मैंने पूछा - ग्राम ग्राम में जिसका नित्य पाठ चलता है वह गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस किसी ने पढ़ा है। केवल पन्द्रह प्रतिशत विद्यार्थियों ने कहा कि

उन्होंने पढ़ा है। तब मैंने उन्हें कहा कि यह कैसा हिन्दी प्रेम है। 'अंग्रेजी विरोध, हिन्दी प्रेम' नहीं बन सकता।''

सक्रियता चाहिए -

सदैव तारुण्य कायम रहे वैसा वह रह सकता है - इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुये, उन्होंने कहा,''शाखा जाकर यह ध्यान रखें कि अपने को बुढ़ापा नहीं आया है। महाभारत युध्द के समय अर्जुन जब युवा था, तब उसकी आयु ७५ वर्ष की थी। शरीर के उत्साह का उपयोग करें। व्यायाम करें, खेलें, मन की ग्रंथि तोड़ें। दूसरे के साथ सामंजस्य हो सके इस प्रकार का वातावरण निर्माण करने का प्रयास करें। किन्तु आजकल व्यायाम के प्रति अरुचि होती जा रही है। महाराष्ट्र की बात है। बताते हैं कि स्वतंत्रता के आन्दोलन में एक युवक जेल में था। वह रोज सुबह उठकर सूर्यनमस्कार लगाता था। यह देखकर एक बड़े कॉंग्रेसी नेता ने उसे सूर्यनमस्कार लगाने से मना किया। उसके पूछने पर उन्होंने बताया कि यह भी एक प्रकार की हिंसा है। तुम शक्ति की उपासना करते हो उससे दूसरे के मन में भय उत्पन्न होता है। किसी के मन में भय उत्पन्न करना हिंसा है। शारीरिक बल से दूसरे को भय लगता है, इसलिए शारीरिक बल नहीं होना चाहिए, इस प्रकार की विकृत भावना भी है।

''रामकृष्ण परमहंस के शरीर त्यागने के पश्चात् सब गुरुभाई किराये का एक मकान लेकर उसमें उपासना करने लगे। श्रीरामकृष्ण के समान ही भाव-समाधि की स्थिति की नकल करने के लिए कई गुरुबंधु आँसू बहाते बैठे रहते। आँसू बहाना तो कठिन काम है नहीं, जरा प्रयत्न करने पर आँसू आ सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द जी को उनका रोना पसंद नहीं था। उन्होंने पूछा, 'तुम रोते क्यों हो? उन लोगों ने कहा, 'यह भाव-समाधि के आनंदाश्रु हैं।' इस पर स्वामी जी ने कहा 'यह ढोंगबाजी बंद करो। श्री रामकृष्ण के समान न तो हममें तपस्या है, न त्याग है, न ही भाव हैं। मैं यह सब नही चलने दूँगा। तपस्या करो, शरीर को शक्तिसंपन्न करो। बलवान् बनो। मुझे रोने वाले संन्यासी नहीं चाहिए।' स्वामी रामदास ने भी ऐसा ही कहा है - 'अपनी टक्कर लगने से चट्टान टूट जाए, ऐसा कठोर शरीर चाहिए।' अपने स्वयंसेवकों को भी इसी तरह चपल, उत्साहपूर्ण, बलवान्, तेजस्वी, उत्कृष्ट शरीर बनाना है, जो किसी भी प्रकार के परिश्रम को करने से पीछे न हटे।''

अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली

जीवन में प्रतिबद्धता चाहिए, यह आग्रह रखते हुए श्री गुरुजी ने कहा,''सामंजस्य बैठाने के लिए दूसरे को जो पसंद न हो, उसे छोड़ना पड़ता है, परंतु क्या छोड़ना और कितना छोड़ना - इसकी एक सीमा होती है। मगर यह सामंजस्य बैठाना हमारे नेताओं पर इस तरह हावी हुआ कि वे बाकी सारी बातें भूल गए। यहाँ तक कि राष्ट्रहित को भी एक ओर रखने में उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ। हालाँकि उन्होंने देश की स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए ही यह सब किया था। किंतु जिसकी और जिसके लिए स्वतंत्रता लेनी थी, उसे ही भुला दिया। वंदेमातरम् को छोड़ा, धर्म की बात करना छोड़ा, भूतकाल का विस्मरण कर अस्मिता

तक को भूले। अपने ही देश में हिन्दू का नाम लेना ओर उसके हित की बात करना अपराध हो गया। यहाँ तक कि अपनी भूमि का विभाजन और जिसे माता कहकर पूजते हैं, उस गाय की हत्या होना भी स्वीकार किया। हिंदू महिलाओं की अवमानना होने पर उनको किसी प्रकार का मानसिक कष्ट नहीं होता।''

''कोई प्रतिबद्धता न रहने का परिणाम यह हुआ कि जीवन में नैतिक मूल्यों का अभाव हुआ और चारों ओर स्वार्थ का बोलबाला बढ़ता गया। धन और सत्ता का महत्त्व बढ़ता गया। समाज को दिशा देने वाली सारी संस्थाएँ प्रयत्नपूर्वक तोड़ दी गईं। दुःख की बात यह है कि इस बात का अहसास भी नहीं है कि हमारा बहुत अनिष्ट हो गया है। विशेषकर पढ़े-लिखे लोग तो इस विस्मरण को ही अपनी प्रगतिशीलता समझ रहे हैं। 'हिंदू' कहते ही वह बिचकता है, जैसे हिंदू होना अपराध हो। अपने स्वयं के बारे में इतना विभ्रम, अपने समाज के प्रति इतनी हीन भावना विश्व में अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलेगी।''

संघ कार्य कब तक करना है?

'अपने अनेक कार्यकर्ता यह प्रश्न पूँछते हैं कि कितने दिन तक यह काम करना पड़ेगा? इसकी कोई मर्यादा है क्या? मेरी दृष्टि से यह प्रश्न विचित्र है। बीमार होने पर लोग वैद्य को दिखाने जाते हैं। औषधि देने पर वैद्य से यह पूछा कि कितने दिन औषधि लेनी पड़ेगी? तो वैद्य यही कहेगा कि स्वस्थ होने तक लो। तुम्हारा स्वास्थ्य बार-बार खराब होने वाला हो तो जन्म भर लो। हम लोगों ने जब कार्य करने का संकल्प लिया, तब यह कहा था क्या कि मैं संघकार्य इतने दिन तक करुँगा? हमने निरंतर, जीवनभर, अंतिम सांस तक कार्य करते रहने का संकल्प किया है। किंतु आजकल मन का नियंत्रण कम हो जाने के कारण, लगकर एक काम करने की प्रवृत्ति कम हो गई है। कोई काम चार दिन करके छोड़ देंगे, फिर दूसरा कुछ करेंगे। Variety is the spice of life का बोलबाला है। उन्हें जीवन में आनंद तभी आता है, जब बदल होता रहे।

बंधनों से भय न माने

''वर्षा का पानी पहाड़ों पर पड़ता है और सारा का सारा बह जाता है। उसे ऐसे ही जाने दिया तो उसका कोई उपयोग नहीं हो सकेगा। यदि उस बहते पानी को बाँध बनाकर रोक कर बड़े जलाशय में एकत्र कर लेते हैं, तब उसका उपयोग बिजली बनाने व खेती आदि के लिए किया जा सकेगा और हमारा जीवन सुखपूर्ण हो सकेगा। यह सब बंधन के कारण संभव हो पाता है। बंधन से मुक्ति के कारण नहीं। बँधे हुए पानी को भी सुव्यवस्था से छोड़ना पड़ता है। चाहे जैसा छोड़ देने पर वह विनाश का कारण बनता है। जब हम राष्ट्र की साधना करने निकले हैं, तब बंधन तो आएंगे ही। बंधनों से बच नहीं सकते। इसलिए बात बंधनों से मुक्ति की नहीं, बंधनों से भय न मानने की बात ही योग्य है।''

समाज का ऋण चुकाना है -

मनुष्य ने समाज के ऋण को कभी नहीं भूलना चाहिए, यह श्री गुरुजी के उद्‌बोधन का सार रहता था। ''समाज के कारण ही व्यक्ति को प्रतिष्ठा, सुविधा व संरक्षण प्राप्त होता

है। समाज के अपने पर अगणित उपकार हैं। परंतु उपकार ग्रहण करना ऋण लेने के समान है। ऋण लेते रहना, परंतु उसे चुकाना नहीं – यह भद्र पुरुष का लक्षण नहीं होता। अपने धर्मशास्त्र में कहा गया है कि मनुष्य को ऋणमुक्त होकर रहना चाहिए। उसके लिए सतत् प्रयत्न करते रहना चाहिए। अपने पूर्वजों ने ऋण के तीन प्रकार बताए हैं। एक है देवऋण – देवताओं का ऋण। इसके कारण अपने को संगटग्रस्त जगत् में जीवन चलाना संभव होता है। वायु में श्वासोच्छवास कर सकते हैं, जल मिलता है, शरीर को जीवित रखने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के साधन उपलब्ध होते हैं। यह हम पर देवताओं की कृपा है। फिर, अपना जन्म मनुष्य योनि में हुआ। अपने पूर्वजों के पुण्य कर्मो से और वंश-परंपरा में उत्पन्न होने के कारण पूर्वजों का श्रेष्ठ ऋण अपने उपर है। अपने समाज के श्रेष्ठ पुरुषों ने ज्ञान का भंडार तैयार करके रखा। बड़े सूक्ष्मदर्शी अर्तींद्रिय द्रष्टा लोगों ने सृष्टि का चिंतन कर ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अनेक प्रकार की उपलब्धियाँ अपने सामने रखीं। वंश-परंपरा से ज्ञान का वह भंडार अपने को प्राप्त हुआ है। उसको ग्रहण करना, उसका उपयोग करना, उसका संवर्धन करना अपना कर्तव्य है। इसलिए उनका अपने पर ऋण है। इस प्रकार देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ ऋण अपने यहाँ बताए गए हैं और कहा गया है कि इन ऋणों से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए। क्या-क्या करना है – यह भी अपने पूर्वजों ने बताया है।

''इस लक्ष्य को पाने हेतु उचित वातावरण, समाज व्यवस्था के निर्माण से ही हो सकता है, जहाँ व्यक्ति अपनी क्षमता व शक्ति के अनुरूप स्वयं का विकास कर सकता है। यदि व्यक्ति चिंताग्रसित हो, अपनी दैनंदिन आवश्यकताओं के प्रति चिंतित हो, तो स्वाभाविक रूप से विकसित नहीं हो सकता। वर्तमान में शिक्षित लोग भी अपनी निजी आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए आजीवन व्यस्त रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में अंतिम लक्ष्यप्राप्ति असंभव है।''

''इस प्रकार की समाज रचना एक दिन में तो होने से रही। किंतु वर्तमान में अनेक आदर्श एवं विचार एक दूसरे में उलझ गए हैं जिसे 'प्रतिस्पर्धा' कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में हम सब इस विचारधारा को, कि 'पुराना सब त्याज्य है' छोड़ दें तथा इसे वैज्ञानिक आधार या दृष्टिकोण से देखें। प्रथम हम अपने देश के बारे में सोचें एवं ठोस आधार पर सुसंस्कारित, सुव्यवस्थित राष्ट्र का गठन करें, जिससे राष्ट्रीय भावना का प्रसार हो। इस देश में ऐसा समाज है, जो इस धरती को अपनी माँ मानता है। उसकी विशेष जीवन-पद्धति है, समान अधिष्ठान हैं, समान दर्शन है एवं समान आकाँक्षाएँ हैं। इस समाज को 'राष्ट्रीय समाज' की संज्ञा दी जा सकती है। मैंने यहाँ देश की व्याख्या, जो आधुनिक समाज शास्त्रियों द्वारा प्रदत्त है, दी है। इस सत्य के विस्मरण के कारण ही आज तक अनेक आपदाएँ आईं हैं। देश के विभाजन से बड़ी पराजय और क्या हो सकती है? आज कश्मीर के संबंध में हम इसी प्रकार का मानस बनाकर बैठे हैं। इसका एकमात्र कारण अपने पुराने इतिहास का विस्मरण तथा उसे झुठलाना है।

देश निर्माण के कार्य में लगें

''मेरी विद्यार्थियों से प्रार्थना है वे छिन्न-विच्छिन्न कल्पनाओं में न बहें। इस पर स्वतंत्रता से विचार करें। मैं आप पर मिथ्या स्तुति-सुमन नहीं बिखेरुँगा। आपको 'देश के स्तंभ' कहा जाता है, किंतु देश ऐसे स्तंभों पर खड़ा नहीं होता। अतएव मैं केवल इतना ही कहूँगा कि आप देश के सेवक बनें, पूरी शक्ति से देश-निर्माण कार्य में लगें। केवल वही राष्ट्र प्रगति में अग्रणी होता है, जहाँ की युवाशक्ति अपनी क्षमता का एक-एक कण राष्ट्र प्रगति में अग्रणी होता है, जहाँ की युवाशक्ति अपनी क्षमता का एक-एक कण राष्ट्र की प्रगति के लिए दाँव पर लगाती है। मैं आग्रह करता हूँ कि स्वयं, प्रसिद्धि, संपत्ति एवं अधिकार की अभिलाषा देश की वेदी पर न्योछावर करें। इसी में देश की समृद्धि, स्वयं का सौख्य एवं समाज का गौरव है।''

''जीवन में भोगप्रवणता को त्याग, केवल राष्ट्रहितसाधक, स्वार्थशून्य भाव भरकर यह राष्ट्रोत्थान कार्य सफल करने का साहस आज का युवक वर्ग ही कर सकता है। आप तथा अन्य छात्रबंधु अपनी इस श्रेष्ठता को पहचानते ही हैं। अतः सद्यस्थिति में जो अनेकविध समस्याएँ राष्ट्र के सम्मुख खड़ीं हैं, उन्हें नष्ट करने के दायित्व को निभाने के लिए योग्यतम बनने का उद्योग आप सब मिलकर करें।''

हिन्दू के नाते जीने की सार्थकता -

एक समय की बात है। स्वयंसेवकों के साथ अनौपचारिक वार्तालाप चल रहा था। संघ के लिए हम नित्य व नैमित्तिक कार्यक्रम करते हैं। दैनंदिन शाखा में जाते हैं, श्री गुरुदक्षिणा समर्पित करते हैं। प्रचारक के जीवन को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार के विचार स्वयंसेवक व्यक्त कर रहे थे। तब श्री गुरुजी ने कहा, ''संघ के लिए आवश्यक है, इसलिए हम कुछ करते हैं यह कहना ठीक नहीं। हमने कुछ भी किया नहीं तो भी संघ का काम बढ़ेगा। 'संघ के लिए हम कुछ करते हैं,' इस विचार में दोष है। संघ की दैनंदिन शाखा में जाना, नये-नये दोस्त जोड़कर स्वयंसेवकों की संख्या बढ़ाना तथा कार्य के लिए जीवनपुष्प अर्पण करने में ही जीवन का साफल्य है। अपने देश में हिन्दू इस नाते से पुरुषार्थयुक्त जीवन जीने के लिए वह आवश्यक है, इसलिए हम संघ का कार्य करते हैं - ऐसी धारणा रखने से अपना जीवन निर्मल व उदात्त होता है। भगवान् को आवश्यक है इसलिए हम उसकी पूजा नहीं करते - भगवान् को पूजन की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता तो हमारी है। संघ का कार्य यह मातृभूमि के पूजन का कार्य है, विशुद्ध देशभक्ति का काम है, वह अपना सर्वस्व लगाकर करने में हमारे हिन्दू के नाते जीने की सार्थकता है, ऐसा सोचना अधिक योग्य है।''

पत्र द्वारा युवाओं को मार्गदर्शन

श्री गुरुजी के मार्गदर्शन सार रूप में इन शब्दों में प्रकट होता है -

''विद्यार्थियों को बाकी के समाज से पृथक वर्ग मानना ठीक प्रतीत नहीं होता। सर्वसामान्य जनता के गुण-विशेष ही युवकों में प्रकट होते हैं। अपरिपक्व अवस्था, अनुभवहीनता तथा वयसुलभ भावावेश के प्राबल्य के फलस्वरुप उनके क्रियाकलाप अदम्य

उद्रेक के रुप में प्रकट होते हैं। आज के युवकों पर सद्वर्तन के कोई भी संस्कार नहीं किए जाते। उन्हें जीवन में एक प्रकार की अस्थिरता एवं असुरक्षितता दिखाई देती हैं। परिणाम यह हुआ है कि वे हताश हो गए हैं। जिसके लिए वे अपनी शक्तियाँ लगाएँ और यत्न करें, ऐसा न तो कोई ध्येय उनके सामने है और न जनता में तथाकथित नेताओं अथवा मार्गदर्शकों का कोई प्रेरणादायक आदर्श ही है। 'गृह' नाम की संस्था आज पूरी तरह ढह गई है। ये कुछ कारण हैं, जिनके फलस्वरुप क्षोभ, अशांति, उच्छृंखलता आदि बातें उत्पन्न होती हैं। इन्हीं को हम युवकों, अर्थात् विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता कहते हैं।''

श्री मदन लाल खुराना, प्रयाग को श्री गुरुजी लिखते हैं –

''विद्यार्थी जीवन में बहुत उथल-पुथल है, यह स्वाभाविक है। स्पष्ट ध्येय तथा तदर्थ समर्पण का विशुद्ध भाव न होने से, साथ ही, चारों ओर की आंदोलनकारी ध्वंसात्मक प्रणालियों में यौवन-सुलभ झुकाव हो जाने से जीवन अस्त-व्यस्त होकर आगे राष्ट्रोपयोगी होने की संभावना कम होती जा रही है। इसमें सबको मिलकर सुधार करने की चेष्टा करने की अत्यन्त आवश्यकता है। केवल छात्रों को उद्दंड आदि अपशब्दों का उपहार देना ठीक नहीं, लाभदायी भी नहीं। आप अपनी शक्ति लगाकर प्रयत्न करें, श्री प्रभुकृपा आपका साथ देगी।''

शिक्षा का लक्ष्य –

श्री प्रकाश अवस्थी, सेक्रेटरी, लखनऊ विश्वविद्यालय छात्र संघ, को पत्रिका प्रकाशन के अवसर पर लिखे पत्र में कहा – ''अपनी राष्ट्र परंम्परा में 'कल्चर' में शुचिता सम्पन्न, शील सम्पन्न, चारित्र्य-सम्पन्न, निःस्वार्थ जीवन बनाना तथा व्यक्ति का स्वरूप सुस्पष्ट कर विश्वात्मक सत्य से तादात्म्य की अनुभूति करने के मार्ग पर निरन्तर बढ़ते रहना ये गुण सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं....

इस दृष्टि से भारतीय लक्ष्य-मूलग्राही परमोन्नति की ओर अग्रसर बनने की योग्यता व्यक्तिमात्र में निर्माण करना है। शिक्षा व तदुत्पन्न संस्कृति इसी दिशा में प्रयत्नशील रहें, यह अपना राष्ट्रीय आदर्श है।

इस आदर्श की ओर विद्यार्थी तथा अध्यापक दोनों का ध्यान आकृष्ट करने के योग्य आपका यह विशेषांक बने, यही मेरी इच्छा है।''

विद्यार्थियों का जीवन राष्ट्र समर्पित हो –

मुंबई के डॉ. माधव परळकर को लिखते हैं–

'अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् का कार्य व्यवस्थित चले। विद्यार्थी बन्धुओं में ज्ञानोपार्जन, बलोपार्जन, शुध्द चरित्रोपार्जन की तीव्र आकाँक्षा जाग्रत हो। सस्ती लोकप्रियता दिलाने वाले निरर्थक आन्दोलनों से घृणा पैदा होती है। अतः राष्ट्रचिंतन, तथा उसके विशुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार हो। राष्ट्रार्थ जीने का निश्चय उदित होकर वह स्थायी हो। सब प्रकार की व्यक्तिगत आकाँक्षाओं का वह निश्चय, प्रेरणा स्रोत और नियामक हो। इन सारी बातों

की ओर उनका ध्यान खींचकर इन्हीं बातों में वे रस लेंगे, नियामक हो। ऐसा प्रयत्न करें। (२०-७-६२) - मूल मराठी से अनुवाद

विदेशों में भारत का मान बढ़ायें -

श्री वेद प्रकाश नंदा, दिल्ली, २८/६/६०.

.....''नवीन युग में श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द जी ने जिस नगर में भारत का विश्व विजयी धर्मध्वज सर्वप्रथम फहराया और जगत् को नतमस्तक किया, उसी पुण्यनगरी में जा रहे हैं। श्री स्वामी जी का अखण्ड सामर्थ्य-स्रोत आपके साथ है, इस प्रकार विश्वास रखें और सब प्रकार यशस्वी होकर आयें। भारत का मान बढ़ाने में आपका भी कुछ अंश अवश्य रहेगा, इसी विश्वास से चलें। श्री परमेश्वर आपको सफल करेंगे।''

विदेशी संस्कृति का अन्धानुकरण न करें -

बाबू भाई ओझा नामक इंग्लैण्ड में पढ़ रहे विद्यार्थी को पत्र -

''आपकी पढ़ाई ठीक चलती होगी। स्वास्थ्य का ध्यान रखना भी आवश्यक है। अपने अनेक देशवासी किसी न किसी उद्देश्य से उस देश में हैं। उनमें से जितने अधिक हों, उतने सब बन्धुओं से स्नेह सम्पर्क प्रस्थापित कर एक दूसरे को अपने वहाँ के वास्तव्य का दायित्व समझाते रहना आवश्यक है।

अनेक बार मैं कुछ मनोव्यथा से सोंचता रहता हूँ कि अपना कोई बन्धु विदेश में जाता है, तो ऐसा रहन-सहन अपनाता है कि उसकी राष्ट्रीय विशेषता सर्वथा लुप्त हो जाती है। विचारादि को भूल जाता है। अपने राष्ट्र के वैशिष्ट्य के संबंध में कहने में असमर्थ होता है। .....राष्ट्र के आदर्श व्यक्ति तथा उनका चरित्र आदि बातों का ध्यान न रहने के फलस्वरुप, विदेशों में अपने देश तथा राष्ट्र के संबंध में अनादर उत्पन्न होना स्वाभाविक है। अपने ही हाथों से अपने राष्ट्र का अनादर होना कितना क्लेशकारक है, यह कोई सोंचता है क्या? ..... अपनी वैशिष्ट्यपूर्ण छाप उस देश के वासियों पर पड़े, ऐसा जीवन, चारित्र्य एवं विचारों की प्रगल्भता प्रगट करने की सक्रिय उत्सुकता निर्माण करने की अतीव आवश्यकता है। हम याने किसी पश्चिमी देश की निकृष्ट अनुकरण की प्रतिकृति मात्र हैं, ऐसी धारणा नष्ट कर अपना श्रेष्ठ वैशिष्ट्यपूर्ण राष्ट्रीय जीवन है, इसका ज्ञान तथा इस संबंध में आदर उत्पन्न हो, ऐसा ही अपना वहाँ का वास्तव्य होना आवश्यक है।''

देश के विकास में ज्ञान का उपयोग -

श्री रवीन्द्र भट्टाचार्य (प. जर्मनी-६/६/६०)

'अपनी पढ़ाई की ओर ध्यान केन्द्रित करें। अपने युवकों को विदेशों में वह ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, जिसका स्वदेश में विकास नहीं हुआ है। वह ज्ञान सम्पादन कर उन्हें शीघ्र स्वदेश लौट आना चाहिये, जिससे वे अपने देश का विकास विकसित देशों के समान कर सकें।

कच-देवयानी की कथा में देवों के गुरु वृहस्पति का पुत्र कच, असुरों के गुरु शुक्राचार्य के पास संजीवनी विद्या सीखने के लिए गया था। विद्या सम्पादन कर जब कच देवलोक लौटने लगा तो शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी ने उसके साथ विवाह की इच्छा प्रगट की। कच ने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की, क्योंकि वह असुर लोक में विद्या सीखने गया था न कि पत्नी प्राप्त करने।'

निष्कलंक जीवन हो -

सुश्री वी.एस. राजलक्ष्मी देवी - (तिरुचि, १८/११/५०)

'हम सबको अपना व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक जीवन आदर्श बनाने के लिए कड़ा परिश्रम करना चाहिए। निष्कलंक चरित्र यह व्यक्ति का सबसे बड़ा अलंकार है। सामाजिक जीवन में निःस्वार्थवृत्ति रहे। महापुरुषों ने यही कहा है।'

आदर्श विद्यार्थी जीवन हो -

सुश्री उमा वर्मा- (जबलपुर, १६/१२/५०)

'पढ़ाई की ओर आपका दुर्लक्ष्य होना उचित नहीं है। उत्तम कार्य तो उसी से हो सकता है, जिसे अपनी जिम्मेदारियाँ ठीक प्रकार से समझ में आती हों। कार्य करते समय जिनसे सम्पर्क आता है- परिवार, पड़ोस, सहाध्यायी, शाला के अधिकारी इन सबसे उत्तम व्यवहार कर जीवन के इन सब पहलुओं में आदर्श खड़ा करना आवश्यक होता है। इस दृष्टि से अच्छा विद्यार्थी जीवन आवश्यक है, याने परीक्षा में अच्छी प्रकार उत्तीर्ण होना और तदर्थ नियमित पढ़ाई करना आवश्यक है।'

स्वस्थ पत्रकारिता हो -

कु. इन्दु अमृता रंगस्वामी - (कैब्रिज, इंग्लैण्ड, १४/८/६३)

'आप उच्च अध्ययन हेतु अमेरिका जा रही हो। वहाँ सफलतापूर्वक अपना अध्ययन पूर्ण कर स्वस्थ पत्रकारिता में तज्ञ होकर आवेंगी, ऐसी अपेक्षा है। निम्न श्रेणी की पत्रकारिता - समाज के लिए हानिकर सिद्ध हो, इस सीमा तक अपने देश में विद्यमान है। इस महत्त्वपूर्ण व्यवसाय में कुछ संयम और विवेक की आवश्यकता है।'

जीवन पढ़ रहा हूँ -

श्री. कृष्णगोपाल माहेश्वरी- (इन्दौर, ४/१२/५४)

'आपके कालेज की पत्रिका में मैं प्रोत्साहन या उपदेश के रूप में कुछ लिखूँ, तो मैं भी आप सब बन्धुओं जैसा एक विद्यार्थी ही हूँ। जीवन पढ़ रहा हूँ। उसके लक्ष्य को समझ कर चलने के मार्ग में, एक बहुत निर्बल पथिक, मार्ग की सुगमता दुर्गमता का अभ्यासी - इतना ही मैं अपने विषय में कह सकता हूँ।'

विद्यार्जन करने की सुव्यवस्था में यह दृढ़ निश्चय करना, जीवन को फुलवाड़ी में उछल कूद करने वाली तितली न मानकर आत्मसमर्पण से अमरत्व की प्राप्ति का यह अवसर परमात्मा ने अपने को दिया है, ऐसा समझकर अतिशुद्ध, पवित्र, चारित्र्यसम्पन्न, तपस्वी

बनकर शुद्ध राष्ट्रज्ञान से युक्त, उसके सर्वस्वार्पित अनन्य सेवक बनने की दिव्य आकाँक्षा से हृदय भरकर उमंग से आगे बढ़ना यही हम सब आज के विद्यार्जनेच्छु नवयुवकों का जीवनोद्देश्य हो। श्रेष्ठ महानुभावों से सुने हुए अनेक विचारों में से यह एक कण आपकी सेवा में प्रस्तुत है।'

वनवासी बंधुओं से निष्कपट व्यवहार हो

श्री मनोहर रेड्डी- (सचिव, वनवासी सेवा प्रकल्प, १८ अप्रैल १९६८)

''रविशंकर विश्वविद्यालय के छात्रों द्वारा वनवासी क्षेत्र में कार्य करने हेतु आपने योजना बनाई है, यह प्रसन्नता की बात है। वहाँ के अपने बंधुओं से निष्कपट भाव से मिलना, अपने नागरी जीवन के अभिमान का आभास भी न हो, सब प्रकार के अनिष्ट भाव को हृदय से हटाकर व्यवहार करना, व्यवहार में कृत्रिमता न आने देना, स्वाभाविक रूप से अपने समाज की एकात्मता प्रकट हो ऐसा ही बोलना-चालना, आचरण करना, अर्थात् वन्य क्षेत्र में अपने लिए अपरिचित रहन-सहन दिखाई देने पर उसके प्रति घृणा आदि दुर्भावनाओं को किंचितमात्र भी अंतःकरण में प्रश्रय न देना, ऐसे कुछ पथ्य सँभाल कर काम करें तो उत्तम यश मिलेगा और आप सब बंधु श्रेय के भागी बन सकेंगे।''

''ग्रीष्मावकाश में प्रारंभ किया काम वहीं छोड़ देना ठीक नहीं होगा। अतः आगे भी मास में एक दो बार, एक-एक दिन निकालकर कुछ बंधु उस क्षेत्र में जाते रहें और नवनिर्मित आत्मीय संबंध दृढ़तर करते रहें तो अधिक शोभनीय होगा। इसके पश्चात् भी कार्य कैसा और क्या करें, इसका विचार कर रखें। आगे तदनुरुप वह चलाया जा सके ऐसी व्यवस्था करना लाभदायी होगा।

आपको उत्तम संकल्प पर आप सबका अभिनंदन कर पत्र पूर्ण करता हूँ।''

जीवन की सार्थकता

श्री दत्तोपंत कल्याणकर- (पवनी, (विदर्भ), १६ अक्तूबर, १९५८)

'..आपने स्वीकार किया हुआ व्रत यथासाँग पूर्ण करने की शक्ति जगन्माता की कृपा से आप को प्राप्त हो। व्रतपूर्ति के पश्चात् अनेक लोग आशीर्वाद एवं वर माँगते हैं। श्रद्धा के बल के अनुसार वह प्राप्त होते भी हैं। सचमुच 'ज्ञान वैराग्यसिद्धि' एवं उसके बल पर निरपेक्षता से 'राष्ट्र' को ही परमेश्वर जानकर उसकी यथार्थ सेवा करने की इच्छा, प्रेरणा, बुद्धि एवं शक्ति प्राप्त हो। इस से जीवन सार्थक होगा।' (मूल मराठी)

विश्वविद्यालय का वातावरण कैसा हो?

श्री प्रबोध बाबू- (वाराणसी, ६ दिसंबर १९५८)

'मैंने समाचार-पत्रों में पढ़ा कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय का कार्य आंशिक रूप में पुनः प्रारंभ हुआ है। किन्तु परिचय-पत्रों का बंधन अच्छी शिक्षा के लिए अशोभनीय एवं अस्वास्थ्यकर है। इस वातावरण में रहनेवाले विद्यार्थियों को दास्यवृत्ति में ही रहने के लिए धमकाया जाएगा या वे समाज के लिए पक्के घोर अपराधियों के रूप में आगे आएँगे। जैसा

कुछ समय कारागृह में रहने से कैदी कठोर बनकर निर्दयी अपराधी बन जाता है, वैसा ही विद्यार्थियों के साथ हो सकता है। हमें आशा है कि परिस्थिति शीघ्र सुधरेगी और सद्‌विचारों की विजय होगी।'

विद्यातुर का संकल्प पूर्ण हो

श्री बालकृष्ण नाईक- (मुंबई, ६ अगस्त, १९६२)

''अधिकाधिक वैज्ञानिक एवं तांत्रिक ज्ञान प्राप्त करने के हेतु आप अमेरिका जा रहे हैं, यह ठीक ही है, क्योंकि पृथ्वी के उस भाग में निवास करनेवाले बंधुओं ने उस क्षेत्र में अभिनंदनीय प्रगति की है, कर रहे हैं और उनके ज्ञान का, ज्ञानप्राप्ति की तीव्र इच्छा को अपने में जगाकर, उनकी अध्ययनशीलता, उद्योगप्रियता, अध्ययवसायिता के गुणों का अपने में अविर्भाव कर लाभ उठाना उचित व आवश्यक है। आपके इस संकल्प को श्रीभगवान् पूर्ण करें।''

विद्यार्थी क्षेत्र का महत्त्व

श्री अरुण साठे- (कोलकाता, १० अक्तूबर, १९६७)

''इस नए क्षेत्र में आपका पर्याप्त परिचय हो चुका होगा। विद्यार्थी क्षेत्र का आपका पुराना अनुभव रहने से इस क्षेत्र में कोलकाता के विद्यार्थी बंधुओं का ध्यान आंदोलनप्रियता की ओर से मोड़कर स्वयं के जीवन में राष्ट्रोपयोगी गुण एवं ज्ञान-संवर्धन करने की ओर उनका मन मोड़ें एवं उनका उपयोग अपने कार्य की ओर करा लें। उसमें से शाखा बढ़ेगी, शिक्षण-संस्थाओं का वातावरण सुधरेगा एवं उस प्रांत की परिस्थिति, जो अनेकों को चिंताजनक लगती है, उसमें परिवर्तन हो सकेगा। वह सब करने की दृष्टि से अधिकाधिक श्रम करने के लिए आगे आना आवश्यक है। अधिक से अधिक सहयोगी प्राप्त करना भी आवश्यक है।''

(मूल मराठी)

संस्मरण

परीक्षा के भूत से मुक्ति

१४ अप्रैल १९५४ को दिल्ली में विद्यार्थी जीवन और परीक्षा के विषय में बात चली। श्री गुरुजी ने कहा - 'परीक्षा के भूत से लोगों को मुक्त करना चाहिए। यह मन और बुद्धि के विकास में बाधा है। एक ऐसा विद्यालय चाहिए, जहाँ जीवनोपयोगी आवश्यक बातों और विषयों का ज्ञान देकर विद्यार्थियो को छोड़ दिया जाए। जिनको नौकरी नहीं करनी है, उन्हें yours faithfully लिखकर अपनी डिग्री बताने की भी जरुरत नहीं।'

संघ : चरित्र का सर्वोत्तम कारखाना

'संघ में चारित्र्य के किताबी पाठ नहीं दिए जाते। यहाँ तो प्रत्यक्ष सजीव आदर्श हैं। चैतन्य युक्त, राष्ट्रार्थ सर्वस्व का त्याग करनेवाली, सारी शक्ति लगाकर समाज की सेवा करनेवाली यह एक बड़ी योजना है। यह एक कारखाना है। मैं आज एक विश्वविद्यालय में खड़ा हूँ। विश्वविद्यालय केवल ज्ञान देता है। जो ज्ञान चारित्र्य नहीं देता, वह कचरे की टोकरी में फेंकने के लायक है। स्वार्थ को तुच्छ समझकर राष्ट्र के लिए सर्वस्वार्पण करने की प्रवृत्ति जिस ज्ञान से उत्पन्न नहीं होती, वह ज्ञान देनेवाली शिक्षण-प्रणाली व्यर्थ है। आज परिस्थिति कठिन है, परंतु निराशाजनक नहीं है। आज शिक्षा ग्रहण करनेवाले छात्र कल समाज में काम करेंगे। केवल शब्दों से नहीं, तो अपनी निःस्वार्थ सेवा द्वारा राष्ट्रीय चारित्र्य के प्रत्यक्ष आदर्श समाज मे खड़े करेंगे, इस एक अपेक्षा से ही मैं अपने विचार आपके सम्मुख प्रगट कर रहा हूँ।'

अधिक महत्त्व के प्रश्न

'अपने इस विशाल युवक समुदाय को महान समाज-रचना में योग्य एवं गुणवान नागरिक किस प्रकार बनाया जाए, यही आज की वास्तविक समस्या है। इस समस्या का हल केवल सतही विचार करने से अथवा ऊपर-ऊपर मरहम-पट्टी करने से नहीं निकलेगा। इन थोथी बातों का कोई भी ठोस परिणाम नहीं निकलेगा। उदाहरणार्थ - प्रस्तुत प्रश्नमालिका में शैक्षणिक संस्थाएँ, शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात, उनका परस्पर संबंध, छात्रावास-व्यवस्था आदि विषयों पर प्रश्न पूछे गए हैं। ये सब बातें समस्या की जड़ तक नहीं पहुँचती। संस्थाएँ कैसे चलायी जाती हैं- इसकी अपेक्षा वे प्रश्न अधिक महत्त्व के हैं कि शिक्षा का ध्येय एवं आशय क्या है, गुणवत्ता की दृष्टि से अध्यापकों का तथा वस्तीगृह (हॉस्टल) प्रमुखों का स्तर क्या है? देश भर में इन सबके आसपास कौन सा वातावरण है? उनका विचार हमें दक्षतापूर्वक करना चाहिए।'

दृश्य-श्रव्य साधन

'आज शिक्षा के क्षेत्र में दृश्य-श्रव्य साधनों का बड़ा बोलबाला है। वह ठीक भी है। पढ़ाने में और चरित्र-गठन में इन साधनों से बड़ी सहायता होती है, परंतु आज इस शक्ति का बड़ा दुरुपयोग हो रहा है। समाचार-पत्रों में, दीवारों पर, घरों पर या जहाँ भी दृष्टि पड़े, विज्ञापन ही दिखाई देते हैं। रेडियो, ध्वनिवर्धक यंत्र तथा ट्रांजिस्टरों से भद्दे गाने कानों पर आघात करते रहते हैं। हमेशा कोलाहल मचा रहता है। आँखों तथा कानों को पग-पग पर क्रमशः उत्तेजक चित्रों एवं गीतों का सामना करना पड़ता है। युवकों का नैतिक मानस इन बातों से कितना कुरेदा जाता होगा, इसकी सहज कल्पना कर सकते हैं।'

विचार करने की मौलिक दृष्टि

'विचार करने की अपनी पद्धति हमें सुधारनी होगी। हमें जीवन के मूलभूत तत्त्व प्रस्थापित करने होंगे। व्यक्ति तथा राष्ट्र के जीवन को परिपूर्ण करनेवाले मूल्यों को हमें स्वीकारना होगा। यही समय की माँग है। इसके अभाव में ही विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता के साथ, हमारे अन्य सामाजिक दोषों की जड़ें समाई हुई हैं। विद्यार्थियों की इस

अनुशासनहीनता की समस्या को उसके व्यापक संबंधों से पृथक मानकर उसका उपाय करने के लिए दौड़ने से हमें किसी भी प्रकार का लाभ होने वाला नहीं है। इस सुधार को यदि हम तत्काल और गंभीरता के साथ हाथ में नहीं लेते हैं, तो अन्य सतही उपाय दिखावा मात्र रह जाएँगे, उनसे कोई भी परिणाम निकलनेवाला नहीं है।'

अहिन्दू भी हिन्दू-जीवन विचार सुनें (26 जनवरी 69)

केरल के प्रांत प्रचारक श्री भास्करराव जी ने विद्यार्थी क्षेत्र में प्रारंभ हुई नयी योजनाओं की जानकारी दी। अनेक महाविद्यालयों में और विशेषतः अभियांत्रिकी महाविद्यालयों में 'हिन्दू युवा संगठन' कार्य शुरु हुआ है, यह स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि, उदाहरण स्वरुप पिछले वर्ष त्रिवेन्द्रम में विश्वविद्यालयीन खेलकूद के मैदान (स्टेडियम) पर स्वामी चिन्मयानन्द जी के भाषण का आयोजन किया गया था। उस समय हजारों विद्यार्थी उपस्थित थे।' श्री गुरुजी ने कहा कि, ''ऐसे कार्यक्रमों में अहिन्दू विद्यार्थियों को भी निमंत्रित किया जाना चाहिये। अपना हिन्दू जीवन-विचार सुयोग्य ढंग से समाज के सम्मुख प्रतिपादन करने वाले वक्ताओं के भाषण सुनने अहिन्दुओं को उपस्थित करने से बहुत लाभ होगा। अपने संपर्क में आकर हिन्दू जीवन धारा की प्रभुता हृदयंगम करना अहिन्दुओं के लिए आवश्यक है।''

नयी पीढ़ी में संस्कारों का अभाव

नयी पीढ़ी में बढ़ रही सांस्कृतिक अवनति पर बातचीत के सिलसिले में :

श्री गुरुजी : ''ईसाई शिक्षा संस्थाओं में भेजे जाने से लड़के उनकी प्रार्थना सीखते हैं, प्रार्थना के साथ ईसाई जीवन-पद्धति का भी उनके मन पर असर होने लगता है। परंतु मेरी शिकायत तो अपने अनुकूल सोंचने वाले माता-पिता के बारे में है। हम अपने बच्चों को घर में कैसी शिक्षा देते हैं? वे रेडियो सुनते हैं। चित्रपट देखते हैं। इसी कारण परंपराप्राप्त हमारे जीवनादर्श से वे भ्रष्ट होने लगते हैं। यहाँ तक ही भ्रष्टता सीमित नहीं रहती। एक घर की बहू-माँ का मुझे स्मरण है। समझदार होकर भी वह भोजनगृह मे अपने छोटे बच्चे को सुलाने के लिये अभद्र गीत का गान कर रही थी। यदि बच्चे अपने माता-पिता का इस प्रकार का अशिष्ट व्यवहार देखें तब वे क्यों न उनका अनुसरण करें?''

''ऐसे घरों में बच्चे अपने संस्कारों में एवं जीवन पद्धति में विकसित नहीं हो पाते। परिणामतः ईसाई मिशनरियों के बहकावे में आ जाते हैं। आठ नौ साल के एक लड़के का मुझे पता है। छुट्टियों में वह घर आया था। जन्माष्टमी का व्रत रखो ऐसा उसके माता-पिता के कहने पर लड़के ने माता-पिता से पूछा कि, ''ऐसे व्यभिचारी व्यक्ति का जन्मदिन क्यों मनाते हैं? ईसा मसीह का जन्मदिन हम क्यों न मनायें? क्या आठ नौ साल का लड़का अपने माँ-बाप से ऐसे प्रश्न पूछने की आप कल्पना भी कर सकते हो?''

''जब हम छोटे थे, घर का वातावरण भिन्न था। माता के सुस्वर स्तोत्रपाठ से हमारी नींद सुबह खुलती थी। मेरी माँ, लिखना पढ़ना नहीं जानती थी। अपनी आयु के उत्तरार्ध में उसका देवनागरी लिपि से परिचय हुआ और वे थोड़ा बहुत मराठी पढ़ सकती थीं। परंतु

उसे अनेक स्तोत्र कंठस्थ थे। मेरी आयु सात साल की होने तक इन स्तोत्रों को सुनकर ही अनेक स्तोत्र मुझे कंठस्थ हो गये थे। घर में रामायण, महाभारत और भगवद्गीता का पाठ चलता था। ऐसे वातावरण में हमारे जीवन का प्रारंभिक विकास हुआ।''

संस्कारों की सही दिशा

प्रश्न : हमारे नवयुवक तो सांस्कृतिक दिवालियापन की ओर बढ़ रहे हैं, इसे कैसे रोका जाय? क्या हमारे साधु संन्यासी कुछ शिक्षा-संस्था प्रारंभ नहीं कर सकते हैं?

श्री गुरुजी : वे अवश्य प्रारंभ कर सकते हैं। उत्तर प्रदेश और अन्य प्रदेशों में ऐसी शिक्षा-संस्थायें काम कर रही हैं। परंतु उन्हें केवल ऐहिक (सेक्यूलर) शिक्षा देने के लिये बाध्य किया जा रहा है। इन शिक्षा-संस्थाओं में केवल ऐहिकता का वातावरण प्रोत्साहित करना अपरिहार्य किया जा रहा हैं। हमारी धार्मिक संस्थाएँ अनेक हैं, परंतु उनका दृष्टिकोण अति विशाल है। हम चाहते हैं कि राष्ट्रभक्ति से प्रेरित काम करना उनकी प्रथम आवश्यकता है। दृष्टिकोण में ओदार्य बाद में आता रहेगा। दृष्टिकोण को विशाल बनाना कुछ समय रुक सकता है।

प्रगति क्या है ?

श्री गुरुजी इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बुलाये गये थे। उस समय श्री गुरुजी ने कहा था कि 'प्रगति क्या है? हर एक गति प्रगति है? कोई पहाड़ की चोटी से गिरे और कहे - देखो, मैं कैसी प्रगति कर रहा हूँ! अगर कोई नेता देश को गड्ढे में ले जाता हो, तो वह नेता नहीं है। शिखर पर जाने के लिए शार्ट-कट नहीं हुआ करता। एक-एक कदम मजबूती से रखना पड़ता है। परिश्रम करना पड़ता है, साधना करनी पड़ती है, तब शिखर पर पहुँचा जाता है। हाँ, शिखर से नीचे आने के लिये शार्ट-कट हो सकता है, ऊपर जाकर नीचे गिरना सरल है।'

व्यवहार से माता-पिता अनुकूल बनेंगे -

इंदौर के संघ शिक्षा वर्ग में राजस्थान के युवा कार्यकर्ताओं से श्री गुरुजी बातचीत कर रहे थे। एक स्वयंसेवक से बोलते समय ध्यान में आया कि वह घरेलू कामों की उपेक्षा करता था। अपने माता-पिता से यथोचित मान-मर्यादा से नहीं बोलता था। कहीं उसने गुसाईं जी का कवित्त्व सुना था। 'जाके प्रिय न राम-बैदेही।' अपने पिता के मन में संघ के प्रति अनुकूल भावना नहीं है, ऐसी कल्पना कर वह स्वयंसेवक घर में ठीक व्यवहार नहीं करता था। उसको संबोधित कर श्री गुरुजी ने कहा कि, 'घर में माता-पिता आदि सब बडों का सम्मान कर और अपने कार्य की दृढ़ता मन में धारण कर, घर के सब काम-धाम करना स्वयंसेवक का कर्तव्य होता है। माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। जब मन में व्यक्तिगत जीवन निःशेष कर केवल संघकार्य ही करें, यह भाव दृढ़ बनता है तब ही माँ-बाप की इच्छा के विपरीत प्रचारक, विस्तारक का कार्य करते समय थोड़ा बहुत संघर्ष उत्पन्न होता है। परन्तु जब माता-पिता को यह अनुभव होता है कि अपने लड़के के जीवन में केवल संघकार्य की पूजा है, स्वयं का जीवन शील चारित्र्य से परिपूर्ण सद्गुणी बनाकर

समाज सेवा में लगाने की एकमात्र आकाँक्षा विद्यमान है, तो वे भी संघ की अवश्य ही प्रशंसा करेंगे। वे भी तो अपना लड़का सुखी हो यही चाह रखते हैं। यदि संघ कार्य में ही उसे सुख-सर्वस्व प्राप्त होता है, तो वे भी संघ के अनुकूल बनेंगे।'

राष्ट्रभाव जागरण

विद्यार्थी परिषद् के केरल के प्रान्त मंत्री श्री. पुतेजत रामचंद्रन से विद्यार्थी परिषद् के विविध कार्यक्रम और वे सफल बनाने के प्रयत्न में आये अनुभवों के बारे में श्री गुरुजी ने पूछताछ की? प्रश्नोत्तर इस प्रकार हुए-

श्री गुरुजी : केरल में विद्यार्थी परिषद् की क्या हलचल है?

श्री रामचंद्रन : हमने विद्यार्थी परिषद् के तत्त्वावधान में श्रेष्ठ पुरुषों के जन्मोत्सव मनाये। इन कार्यक्रमों से हम विद्यार्थियों मे राष्ट्रभावना का जागरण कर रहे हैं।

श्री गुरुजी : राष्ट्रभावना जागरण में कई बातों का अन्तर्भाव रहता है। अपनी विरासत, श्रेष्ठ परम्परा, राष्ट्रीय दृष्टिकोण आदि अनेक बातें हैं। अन्य देशों के प्रति अपनी स्वाभाविक अभिवृत्ति (एटिट्यूड) का भी उसमें समावेश रहता है। राष्ट्रभावना जागरण का भारत में प्रयास नहीं हो रहा है, यह तो दयनीय अवस्था है। इंडोनेशिया और मलय में प्रभु रामचंद्र और सिंदा (सीता का उनकी भाषा में अपभ्रंश) की चित्र कथा प्रकाशित कर उनकी प्राचीन परंपरा की जानकारी नयी पीढ़ी को देने का वहाँ प्रयास होता है। इन पुस्तकों को मैंने देखा है। वहाँ के शासनकर्ता अनुभव करते हैं कि उपासना पंथ इस्लाम होने पर भी उनकी परंपरा हिंदू है।

आपने देखा होगा कि ईसाई मिशनरी ऐसा ही साहित्य प्रसृत कर ईसाई आदर्शों से बालक-बालिकाओं का मस्तिष्क प्रभावित करने में सक्रिय हैं। इन मिशनरियों ने एक नयी प्रथा प्रारंभ की है। अपनी कथा-कहानियों में वे पात्रों के नाम राम, कृष्ण, गोविंद आदि रखते हैं। परन्तु कथा-कहानियों का प्रभाव तो ईसाई विचारों का पोषण करने वाला ही होता है।

श्री रामचंद्रन : कृपया हमारे लिये कुछ कार्यक्रम सूचित करें जिससे विद्यार्थियों में राष्ट्रभावना जगाई जा सके।

श्री गुरुजी : कार्यक्रम सूचित करना आवश्यक नहीं है। आपके काम में हस्तक्षेप करना मेरे लिये उचित न होगा। ये तो आपको ही सोच विचार कर तय करना चाहिये। मेरा इतना ही कहना है कि जन्मदिनोत्सव का स्वरूप एक सभा जैसा ही न बने। इन श्रेष्ठ पुरुषों का आदर्श जीवन में चरितार्थ करने की प्रेरणा विद्यार्थियों को कैसे प्राप्त होगी, यह आपको सोंचना चाहिये।

श्री रामचन्द्रन : निबंध लेखन स्पर्धा, या वक्तृत्व स्पर्धा जैसे कार्यक्रमों से प्रोत्साहित होकर वे प्रेरित हो सकेंगे। स्पर्धा के विषय में यथार्थ अभिरुचि निर्माण होकर उनमें सही प्रेरणा जगेगी, ऐसा लगता है।

श्री गुरुजी : आपका यह विचार ठीक है। यह केवल बौद्धिक अभिरुचि तक सीमित न रहे, इसकी आपको चिंता करनी होगी। एक व्यक्ति को मैं जानता हूँ। अनेक विषयों पर उनका लेखन अध्ययनपूर्ण रहता है। परंतु उनके विचार और व्यवहार में महान अंतर है। लगता है कि वह केवल लेखन-कला का ज्ञाता है। यह प्रवृत्ति तो हानिकर सिद्ध होगी।

28 जनवरी 51, पटियाला में युवा कार्यकर्ताओं की बैठक में –

'अपने बारे में सोचने के बजाय हम दुनिया का सोंचते हैं। हिन्दुओं के हित का सोंचने के स्थान पर ईसाई और मुसलमानों का सोचते हैं। भारत के बजाय अमेरिका, रुस, नेपाल, चीन, कोरिया के विषय में हम सोंचते है। एक ज्योतिषशास्त्र के विद्यार्थी की कथा का मुझे स्मरण हुआ। वह तारों को देखता हुआ रात में जा रहा था। चलते-चलते वह कुएँ में गिर गया। दूसरों के तारे और ग्रह देखने के बजाय हम अपने ग्रह और तारों को देखें तो ठीक होगा!'

देशभक्ति व्यापार नहीं

संघ के संस्थापक के घर की दीवार गिर गई। किसी के यह पूछने पर कि इसे कब दुरुस्त करोगे, डॉक्टर जी ने जवाब दिया कि 'धीरे-धीरे होगा।' प्रश्नकर्ता ने कहा कि आप समाज का इतना काम करते हो, और आपके पास दीवार बनाने के लिये पैसा नहीं है। फलाना देखिये। उसने मकान बनवाये। मोटर रखी है। वह देशभक्त भी है। जायदाद बन गई है। और आप ऐसे ही रहे। पू. डॉक्टर जी ने कहा कि ,'मैं तो ऐसे ही मरुँगा। देशभक्ति के नाम पर व्यापार नहीं करूँगा।

माँ की अभिलाषा

'हमें स्वयं को भाग्यशाली समझना चाहिए कि हम वर्तमान संकटपूर्ण घड़ी में जन्मे हैं। अपने लोग शांति, समृद्धि, श्री एवं शक्ति-संपन्न राष्ट्र में जन्म लेने को ही सौभाग्य की बात मानते हैं। आज हमारे देश में ऐसे लोग पर्याप्त संख्या में हैं, जो इस प्रकार से सोचते हैं और वहाँ के सुख-विलासों से प्रलुब्ध होकर अमरीका, इंग्लैंड आदि देशों में जा बसते हैं। किंतु वास्तविक वीरता से युक्त पुरुष कुछ और ही सोंचते हैं और इस बात के लिए ईश्वर को धन्यवाद देते हैं कि इस देश में रहते हुए उन्हें कठिनाइयों, अभावों, विपदाओं और कष्टों का सामना करना पड़ रहा है, जिसमें से अपने प्रयत्नों एवं संघर्षो के द्वारा उनका निवारण कर समृद्धि की ओर जाने का उन्हें अवसर मिला है। वैभव, समृद्धि तथा विपुलता के काल में हमारे जीवन का अर्थ होगा केवल और केवल जन्म लेना, कुछ काल तक सुख-सुविधापूर्वक जीवनयापन करना तथा एक दिन मर जाना, किंतु विपरीत परिस्थितियों में हमें अपने अंदर के सर्वोत्तम को प्रकट करने, जो अपने पौरुष की परीक्षा करने और विश्व के समक्ष भव्यतापूर्ण प्रचंड व्यक्तित्व के रूप में खड़े होने का अवसर मिलता है। हमें अपनी पूर्ण उच्चता को प्राप्त करने और मानव-कल्पना की उच्चतम उड़ान के आगे की ऊँचाई तक उड़ान भरने का सुयोग प्राप्त होता है।

आज माँ को अन्य सभी बातों से अधिक आवश्यकता है ऐसे पुत्रों की जो तरुण, मेधावी, त्यागी और इससे भी बढ़कर वीर्यवान तथा पौरुषसंपन्न हों। जब नारायण (शाश्वत ज्ञान) तथा नर (शाश्वत पौरुष) का संयोग होता है, विजय निश्चित समझनी चाहिए। ऐसे प्रभावसंपन्न पुरुष ही इतिहास के निर्माता होते हैं।'

◆◆◆